International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 251-254

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 251-254
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-11-2019
Accepted: 29-12-2019

डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

वैराग्यशतक में निरूपित अलंकारयोजना

डॉ. रमा सिंह

सारांश
जीवन की निस्सारता का ज्ञान करानेवाली महाकवि भर्तृहरिविरचित 'वैराग्यशतक' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। शतककाव्य की शृङ्खला में प्रमुख होने के साथ-साथ यहाँ काव्य के घटकतत्त्वों का सुसंयोजन भी दिखाई पड़ता है। काव्यघटकतत्त्वों के सुसंयोजनक्रम में महाकवि ने काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व के रूप में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का भी सफल निरूपण किया है। अनुप्रास, उपमादि विविध अलंकारों का यहाँ प्रयोग किया गया है। उनकी अलंकारयोजना भाव, भाषा व रीति के अनुकूल है। प्रस्तुत शोध आलेख में उनकी अलंकारयोजना का सुसम्पादन प्रदर्शित करना तथा पाठकों को उससे अवगत कराना ही लक्ष्य है।

कूटशब्द :- वैराग्यशतक, अलंकार, भर्तृहरि, शब्दालंकार, अर्थालंकार।

प्रस्तावना

अलंकारयोजना:

शरीर को विभूषित करनेवाले तत्त्व का नाम अलंकार है। जैसे कटककुण्डलादि आभूषण दैहिक शरीर को आभूषित करते हैं वैसे ही अनुप्रास उपमादि अलंकार काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं। काव्य का अस्थिर धर्म होते हुए भी अलंकार अलंकार्य का उत्कर्षाधायक तत्त्व है।

महाकवि भर्तृहरि का वैराग्यशतक संसार की निस्सारता को द्योतित करता हुआ वैराग्य को श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी मानता है। इस वर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने विभिन्न अलंकारों का आश्रय लिया है। उनकी अलंकार योजना में शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया गया है, यथा - शब्दालंकारों में प्रमुख अनुप्रास की योजना इस प्रकार है-

अनुप्रास - अनुप्रासः शब्दासाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।
अर्थात् स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद, पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। इसी तरह शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः। लाटानुप्रास इत्युक्तो।

लाटानुप्रास - केवल तात्पर्य मात्र के भिन्न होने पर शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होने पर लाटानुप्रास नामक अलंकार होता है।

यथा- रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली,
रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्याः कथाः।
कोपापाहितबाणपबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः।।[1]

[1] वैराग्यशतक, श्लोक-79

इसमें रम्या, रम्यं, रम्या, रम्यं, रम्यं में शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति हुयी है। यहाँ शब्दों के अर्थ में भेद न होने पर भी विषयीभूत सम्बन्ध भिन्न है। इसके और भी उदाहरण है।[2]

छेकानुप्रास – व्यंजनों के समूह का एक ही बार अनेक प्रकार का साम्य होने को छेकानुप्रास कहते हैं। यथा –

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः।
महदिभः पुण्यौघैश्चिरंपरिगृहीताश्च विषया,
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्।।[3]

श्च, श्च, न्त, न्त, विष, विष वर्णों की आवृत्ति उसी क्रम से हुयी है। वैराग्यशतक में छेकानुप्रास का अधिक वर्णन मिलता है।[4]

वृत्यानुप्रास – अनेक व्यंजनों की एक ही बार, एक ही प्रकार से (केवल स्वरूप से, क्रम से नहीं) समता होने पर अथवा अनेक व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति होने पर अथवा अनेक प्रकार से (स्वरूप और क्रम से) अनेक वर्णों की आवृत्ति होने पर या एक ही अक्षर की एक ही बार आवृत्ति होने पर, या एक ही वर्ण की अनेकशः आवृत्ति होने पर वृत्यनुप्रास नामक अलंकार होता है। यथा –

चूडोत्तंसितचन्द्रचारुकलिकाचञ्चच्छिखाभास्वरो,
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन्।
अन्तः स्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन्
श्वेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः।।[5]

इस पद्य में च्, त्, क्, ल्, श्, स्, फ् आदि वर्णों की स्वरूपतः आवृत्ति है। क्रम से नहीं।
इसके और भी उदाहरण हैं।[6]

उपमा – प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।
यथा –

नाभ्यस्ता प्रतिवादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता,
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नार्कं न नीतं यशः।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्।।[7]

इस पद्य में कामिनी के कोमल अधर की (तुलना) उपमा कोमल पल्लव से दी गयी है। यथा – चन्द्रोदय के समय उद्दीपक होने के कारण कामिनी के कोमल पल्लव के समान अधर के रस का पान नहीं किया तो उसने सूने निर्जन गृह में दीपक की भाँति पूरा तारुण्य निष्फल ही व्यतीत किया।
और भी उदाहरण इस उपमा अलंकार को पुष्ट करते हैं।[8]

रूपक – तदरूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।
यथा –

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला,
रागग्राहावती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।[9]

आशा नाम की नदी है, इच्छाएँ जल है, तृष्णा तरंगित लहरें हैं। राग रूपी मगर (एवं घड़ियालों) से भरी हुयी है, शंका रूपी पक्षियों वाली है। धैर्य रूपी वृक्ष को ध्वंस करने वाली है। अज्ञान रूपी भंवर के कारण पार करना कठिन है, बहुत गहरे एवं ऊँचे चिन्ता रूपी किनारों वाली है। इस प्रकार की आशा रूपी नदी को विशुद्ध मन वाले योगीराज ही पार करके आनन्द उठा सकते हैं।
उपमेय एवं उपमान का अभेद ज्ञान हो रहा है। यथा – आशा नाम नदी, मनोरथ जल, तृष्णा तरंगाकुला, रागग्राहवती, वितर्क विहगा, धैर्य द्रुम, मोह आवर्त, एवं अतिगहना प्रोतुङ्गचिंतावटी आदि।
यहाँ रूपक अलंकार के और भी उदाहरण मिलते हैं।[10]
उपमा और रूपक अलंकारों का सौन्दर्य का एक अन्य उदाहरण, यथा –

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नेकोऽपि चान्ते।
इत्थं नेयौ रजनिदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ,
कालः कल्यो भुवनफलके क्रीडति प्राणिशारैः।।[11]

कालः कल्यो, भुवनफलके, प्राणीशारै में रूपक है। रजनी-दिवसौ द्वौ अक्षौ इव में उपमा अलंकार है।
चौपड़ के खेल में, जिस घर में पहले बहुत से गोट रहते हैं वहाँ कभी एक ही गोट रह जाता है। इसी प्रकार जिस घर में एक गोट होता है, वहाँ कई एक इकट्ठे हो जाते हैं। अन्त में सब घर खाली हो जाता है। खेल समाप्त हो जाता है। इस संसार की लीला भी चौपड़ के समान है काल रूपी पुरुष जुआरी है। सारा संसार चौपड़ है। रात और दिन पासे या कौड़ी है। समस्त प्राणी उसके गोट हैं।

अर्थान्तरन्यास का लक्षण व उदाहरण –

2 वही, श्लोक-7, 23, 53, 79, 83
3 वही, श्लोक-12
4 वही, श्लोक-13, 14, 27, 29, 31, 34, 43, 45, 49, 50, 64, 76, 80, 81, 82, 85, 86, 91, 92
5 वही, श्लोक-1
6 वही, श्लोक-17, 18, 36, 37, 39, 46
7 वैराग्यशतक, श्लोक-46
8 वही, श्लोक-16, 38, 50, 73, 74
9 वही, श्लोक-10
10 वही, श्लोक-1, 17, 22, 25, 36, 42
11 वही, श्लोक-42

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते,
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

यथा – न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया,
महन्तो जायन्ते व्यसनामिव दातुं विषयिणाम्।।[12]

इस संसार में फल कामना से किये हुए पुण्य कर्मों को मैं श्रेयस्कर नहीं समझ रहा हूँ क्योंकि सत्कर्मों के परिणाम को सोचते हुए मुझे भय उत्पन्न होता है कि कृतपुण्य कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि का उपभोग करने से पुण्य क्षीण होने पर भी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। अत्यधिक पुण्यकर्मों के आचरण से प्राप्त महान् विषय विषयासक्त पुरुषों को विपत्ति देने के लिए ही उत्पन्न हुआ करते हैं। इस संसार में फल कामना से किए गए पुण्य कर्म विपत्ति के लिए होते हैं। इस विशेष बात का समर्थन (द्वितीय) संचित पुण्य कर्मों के द्वारा स्वर्गादि का उपभोग करने के बाद उन कर्मों के क्षीण होने पर दुःख का भोग करना पड़ता है। इस द्वितीय (वाक्य) अर्थ से समर्थन किया गया है। यहाँ दोनों में साधर्म्य है।

विशेषोक्ति – सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्ति त्रिधा च सा
उक्त्यनुक्त्योर्निमित्तस्याप्यचिन्त्यत्वे च कुत्रचित्।

यथा–

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं विशीर्णशतखण्डमयी च कन्या
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति।।[13]

भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न भोजन है, वह भी रूखा-सूखा और एक ही वक्त का, भूमि ही बिस्तर है। निज शरीर ही परिवार के सदस्य हैं। फटे पुराने कपड़ों द्वारा वस्त्र प्रयोजन-सिद्ध है, तथापि ये विषयासक्ति चित्त को नहीं छोड़ रही है।
यहाँ पर विषयों का परित्याग रूप हेतु उपस्थित है। फिर भी मन की एकाग्रता रूप कार्य नहीं हो रहा है। अर्थात् सुख के साधनों का तो परित्याग कर दिया है किन्तु मन अभी भी विषयासक्ति में लगा है।

दीपक – अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकन्तु निगद्यते।।
यथा –

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च श्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नेगषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः।।[14]

मोह को छोड़ दो, महादेव जी में मन लगाओ और गंगाजी के तट पर वास करो, इस संसार में जल की तरंगों, पानी के बुलबुलों, बिजली की चमक, आग की लौ, साँपों, सम्पत्तियों तथा मित्रों का कोई विश्वास नहीं है।
यहाँ पर स्वबन्धुजनों रूप प्रस्तुतों का एवं जल की तरंगों रूप अप्रस्तुतों का एक ही धर्म (अस्थिरता, अविश्वसनीयता) के नष्ट हो जाने से सम्बन्ध है।

निदर्शना – अभवन् वस्तु सम्बन्ध उपमा परिकल्पकः
निदर्शना भवेत् सेयं मम्मटेन यथोदिता।।
यथा –

आसंसारात् त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात! तादृङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रमार्गं गतो वा
योऽयं धत्ते विषयकारिणोगाढ़गूढाभिमान
क्षीवस्यान्तः करणकरिणः संयमालालीलाम्।।[15]

सृष्टि के आदि से लेकर अन्त तक तीनों लोकों में कोई भी पुरुष ढूंढने पर भी नहीं मिलता जो विषय रूपी मनोहारिणी हथिनी पर मस्त हाथी के समान भोगासक्त मन को बाँधने में समर्थ हुआ हो। अर्थात् मन को वश में रखना साधारण प्राणी के वश में नहीं।
यहाँ पर वस्तु का सम्बन्ध ठीक न बैठने के कारण अन्त में उपमा की परिकल्पना की गयी है। मनुष्य का मन रूपी हाथी सांसारिक विषयीरूपी हथिनी पर उपभोग द्वारा आलेपन करता है। वह मन रूपी हाथी को संयम रूपी खूंटे से बांधने में असमर्थ है।

व्यतिरेक – उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

यथा – महाशय्या पृथ्वी विपुलमुपधानं भुजलतां

वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः
शरच्चन्द्रो दीपो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखी शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव।।[16]

योगी के लिए जमीन ही गद्दा है, आकाश ही शामियाना है, हाथी ही उसका तकिया है, मन्द-मन्द वायु ही उसका पंखा है। वैराग्य ही उसकी वनिता है, इस प्रकार वह सब कुछ त्यागकर भी महाराजाओं के समान सुख से सोते हैं। यहाँ पर उपमेय भूत योगी (संन्यासी) का उपमान भूत राजा से आधिक्य सिद्ध किया गया है क्योंकि कुछ न होते भी सन्तोष रूपी धनयुक्त संन्यासी सुख का अनुभव करता है। उधर राजा वैभव सम्पन्न होने पर ही सुख का अनुभव कर पाता है। अतः योगी का सुख अधिक है।

12 वैराग्यशतक, श्लोक-11
13 वही, श्लोक-15
14 वैराग्यशतक, श्लोक-64
15 वही, श्लोक-81
16 वही, श्लोक-94

दृष्टान्त – दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

यथा –

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।[17]

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि शरीर के शिथिल होने, इन्द्रियों के ढीले पड़ने, बुढ़ापे के आ घरने और जवानी के ढल जाने से पहले ही परिश्रम करके आत्म कल्याण की साधना करे, नहीं तो सब कुछ बीत जाने पर वृद्धावस्था में मुक्ति के लिए प्रयत्न करना ऐसा ही है जैसे – घर के जलने पर कुआँ खोदने का उपाय करना।

यहाँ उपमेय वृद्धावस्था में आत्मकल्याण के लिये कार्य करना। उपमान – घर में आग लगने पर कुआँ खुदवाने के समान है। इन दोनों का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। यहाँ पर एक ही बात को शब्दान्तर द्वारा कहा गया है।

स्वभावोक्ति- स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूप वर्णनम्।

यथा –

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा,
हानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः।
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनः सम्प्राप्तकन्थासने
निर्मानो निरहङ्कृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः।।[18]

भिक्षा में निर्वाह करे, लोगों के बीच रहते हुए भी किसी से कोई मतलब न रखे, किसी वस्तु के त्यागने में संकोच न करे, न किसी की इच्छा करे, फटे पुराने वस्त्रों का आसन बनाकर निर्वाह करे, मान-अपमान का विचार न कर मन सदा शान्त रहे, ऐसी स्थिति किसी महान तपस्वी की ही हो सकती है।

इस पद्य में महान तपस्वी (योगी) की स्थिति का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

स्पष्ट है कि महाकवि के वैराग्यशतक में अलंकारों का सुन्दरता से वर्णन किया गया है। काव्य के भाव का ध्यान रखते हुए कवि ने कलापक्ष को भी सुन्दरता से निरूपित किया है। अलंकार प्रयोग एवं अलंकार योजना में कवि सर्वाधिक सफल हैं।

सन्दर्भ

1. काव्यप्रकाश, सम्पादक – डॉ. नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, विक्रम संवत्-2017.
2. काव्यालङ्कार, आचार्य भामह, भाष्यकार – शर्मा, देवेन्द्रनाथ, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संशोधित संस्करण, 1985.
3. ध्वन्यालोक, सम्पादक – पं. दुर्गाप्रसाद, मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली, 1983.
4. भर्तृहरिशतकत्रयम्, व्याख्याकार – झा, नरेश, होसिंग, जगन्नाथ शास्त्री एवं त्रिवेदी, राधेलाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण-2008 ई.
5. भारतीय साहित्य का इतिहास, लेखक – विण्ट्रनिट्ज, अनूदित – झा, सुभद्रा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978.
6. शतकत्रयम्, भर्तृहरि, संपादक – कोसाम्बी, श्रीदामोदर धर्मानन्द, भारतीय विद्या ग्रन्थावली, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1946.
7. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, उपाध्याय, रामजी, रामनारायण लाल, वेणीमाधव, इलाहाबाद, 1961.
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उपाध्याय, आचार्य बलदेव, शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम संस्करण, 2001.
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, वाचस्पति, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1978.
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, शर्मा, उमाशंकर, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2014.
11. साहित्यदर्पण, व्याख्याकार – शास्त्री, शालिग्राम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, नवम संस्करण, 1977002
12. A History of Sanskrit Literature, Keith, A.B., Oxford University Press, London; c1920.
13. Nīti and Vairāgya Śatakas of Bhartṛhari, by Kāle, M.R., Motilal Banarsidas, Delhi, Seventh Edition; c1971.

17 वैराग्यशतक, श्लोक-75

18 वही, श्लोक-95